मानव जीवन
की गरिमा

मानव जीवन की गरिमा

मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता—मनुष्य जीवन इस सृष्टि की सबसे श्रेष्ठ रचना है। लगता है भगवान ने अपनी सारी कारीगरी को समेटकर इसे बनाया है। जिन गुणों और विशेषताओं के साथ इसे भेजा गया है, वे अन्य किसी प्राणी को प्राप्त नहीं हैं। इस कथन में भगवान पर पक्षपाती होने का आरोप लग सकता है, किंतु बात ऐसी है नहीं। भगवान तो सबका पालनहार पिता है, उसे अपनी सभी संतानें एक समान प्रिय हैं और वह न्यायप्रिय है। सभी प्राणियों को उसने जीने लायक आवश्यक सुविधाओं को देकर भेजा है। स्वयं निराकार होने के कारण उसने मनुष्य को अपना मुख्य प्रतिनिधि बनाकर सृष्टि (विश्व-व्यवस्था) की देख-रेख के लिए भेजा है। उसे उसकी आवश्यकता से अधिक सुविधाएँ और शक्तियाँ इसलिए दी गई हैं, ताकि वह उसके विश्व-उद्यान को सुंदर, सभ्य और खुशहाल बनाने में अपनी जिम्मेदारी को ठीक ढंग से निभा सके।

शारीरिक दृष्टि से मनुष्य की स्थिति अन्य प्राणियों से बेहतर नहीं है। पक्षियों की तरह हवा में उड़ना, मछलियों की भाँति जल में तैरना उसे नहीं आता। बंदर के समान पेड़ पर उछल-कूद वह नहीं कर सकता, शेर की तरह अपना पराक्रम-बल भी नहीं दिखा सकता। हाथी के सामने वह बौना सा दिखता है। इंद्रिय क्षमताओं में भी अन्य प्राणी उससे श्रेष्ठ सिद्ध होते हैं। सूँघने की शक्ति में कुत्ता, सुनने में उल्लू और देखने में बाज मनुष्य से बहुत कुशल ही सिद्ध होते हैं। कुछ जीवधारी तो भूकंप, वारिश , तूफान आदि का पहले से ही अनुमान भी लगा लेते हैं और समय रहते अपना बचाव कर लेते हैं, किंतु मनुष्य अपनी बुद्धि और पुरुषार्थ की क्षमता में सभी प्राणियों पर भारी पड़ता है। अपने से अधिक शक्ति शाली, खतरनाक और भारी भरकम शेर, चीता व हाथी जैसे वनप्राणियों को वह अपने बुद्धि कौशल और मानसिक बल से हरा देता है। उन्हें पिजड़े में बंद कर देता है और वह सरकस में भाँति-भाँति के खेल-तमाशे करवाता है। अपनी बौद्धिक और मानसिक विशेषताओं के बल पर ही उसने अपने

जीवन को सुखी व सरल बनाने के प्रयास में ज्ञान-विज्ञान की कितनी ही खोजें कर डाली हैं। भाषा-लिपि, कला-साहित्य, चिकित्सा, मनोविज्ञान, दर्शन, राजनीति आदि उसी की विशेषताएँ हैं, जिसके कारण वह सभ्य प्राणी कहलाता है। अन्य प्राणियों से इसकी तुलना की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

मनुष्य की इच्छा-शक्ति का भी कोई जबाव नहीं है। उसने चाहा तो अपने पुरुषार्थ के बल पर धरती, आकाश और समुद्र को मथकर रख दिया। धरती के घने जंगलों, पर्वत की ऊँची चोटियों, लंबी नदियों, चौड़े रेगिस्तानों और बर्फीले मरुस्थलों को उसने नाप लिया है। गहरे सागर के भीतर वह खोजबीन कर रहा है और अंतरिक्ष की गहराइयों में ग्रह-नक्षत्रों के ऊपर जीवन की संभावनाओं की तलाश करता हुआ, चाँद सितारों पर अपना घर बसाने की सोच रहा है। मनुष्य की इस पुरुषार्थ गाथा के सामने तो समुद्र मंथन की पौराणिक कथा भी फीकी पड़ जाती है, किंतु अपनी बौद्धिक क्षमता और पुरुषार्थ के बल पर ही मनुष्य को सबसे श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यदि इनका उपयोग खाली अपने स्वार्थ, दूसरों पर रौब जमाने या शोषण आदि में किया गया तो यही क्षमताएँ अशांति, मुसीबत और परेशानी भरा माहौल खड़ा करती हैं। ऐसे में मनुष्य की प्रशंसा नहीं की जा सकती। यह ईश्वर की उस इच्छा की भी अवज्ञा है, जिसके अनुसार उसने मनुष्य को अतिरिक्त योग्यताएँ अपने विश्व-उद्यान को सजाने-सँवारने के लिए दी हैं। ऐसे में ईश्वरीय न्याय विधान में दंड की भी उचित व्यवस्था है। इसी के अनुसार गंभीर कुकर्मों के लिए मनुष्य को पशु-पिशाच और भूत-प्रेत जैसी नीच योनियों तक में भटकना पड़ता है। बड़े अधिकारियों को उनके निर्वाह वेतन के अतिरिक्त गाड़ी-बंगला, नौकर-चाकर, सहयोगी आदि के रूप में अतिरिक्त सुविधाएँ इसलिए दी जाती हैं कि वे बड़ी जिम्मेदारियों को अधिक अच्छे ढंग के साथ निभा सकें, न कि अपना रौब और विलासिता प्रदर्शन के लिए। सुविधा-साधनों का गलत उपयोग करने पर उन्हें दंड भी मिल सकता है।

मनुष्य जीवन की श्रेष्ठता का आधार

मनुष्य जीवन को सबसे श्रेष्ठ मानने का आधार, उसके अंदर मौजूद अच्छे गुण हैं और प्रकट होने के लिए अपना रास्ता खोजते रहते हैं। संयम-सेवा, विनम्रता-सहनशीलता और प्रेम-सद्भाव आदि के रूप में प्रकट होकर ये मनुष्य को पशु-पिशाच स्तर से ऊपर उठाकर उसे एक अच्छा इंसान बनाते हैं और महानता के रास्ते पर आगे बढ़ाते हैं। मनुष्य की बुद्धि और पुरुषार्थ की क्षमता तभी अपने समय और सुविधा-साधनों का सही-सही इस्तेमाल कर पाती है। तभी मनुष्य की शक्ति स्वार्थ, विनाश और गलत कामों से हटकर ईश्वर की विश्व-वाटिका को सुंदर, सभ्य और सुसंस्कृत बनाने में अपना भाव-भरा योगदान देती है।

मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी पूँजी उसकी भाव-संवेदना है। इसी को अपनाने पर मनुष्य दूसरों की पीड़ा और दुःख-दर्द को समझ पाता है। तभी वह दूसरों के दुःख को बँटा लेता है और अपने सुख को बाँट देता है। यही सद्भाव, सहानुभूति, सज्जनता, शालीनता आदि गुणों के रूप में चारों ओर शीतलता, मधुरता और सुख-शांति का वातावरण बनाता है। इसी को धारण करने पर मनुष्य में महामानव, देवमानव और ऋषि पैदा होते हैं। जो अपने हृदय में छलकते प्रेम भाव, सूझ भरे कार्यों और अपने आदर्श जीवन द्वारा इसी मनुष्य जीवन में देवता की उपस्थिति को प्रमाणित करते हैं और इसी धरती पर स्वर्ग जैसी स्थिति खड़े करते हैं। समय-समय पर ऐसे ही मनुष्यों की अधिकता ने इस धरती पर सतयुग-स्वर्णयुग जैसे सुख-शांति भरे वातावरण को तैयार किया है। ऐसा श्रेष्ठ जीवन जीने के कारण ही कभी भारत भूमि के तैंतीस करोड़ निवासी, तैंतीस कोटि देवताओं की श्रेणी में रखे जाते थे और भारत विश्वगुरु और चक्रवर्ती जैसी उपाधियों से पूरे विश्व में विख्यात था।

वास्तव में भगवान ने मनुष्य को अपने ही रूप में बनाकर भेजा है। पूरे ब्रह्मांड का नमूना पदार्थ के सबसे छोटे कण परमाणु के अंदर देखा जा सकता है। इसके अंदर सौर मंडल की तरह, इलेक्ट्रान, प्रोटोन आदि कण केंद्रीय नाभिक के इर्द-गिर्द घूम रहे हैं। विशाल वटवृक्ष का पूरा नक्शा उसके छोटे से

बीज में बंद पड़ा है। खाद-पानी मिलते ही यह अंकुरित होकर अपना रूप प्रकट करना शुरु कर देता है। ऐसे ही मनुष्य के अंदर वह सब कुछ बीज रूप में छिपा पड़ा है, जो स्वयं भगवान में है। कह सकते हैं कि सामान्य अवस्था में भगवान हमारे अंदर सो रहे हैं। ऋद्धि-सिद्धियों के रूप में अनेकों शक्तियाँ हमारे अंदर छिपी पड़ी हैं। जब साधना द्वारा उन्हें जगाया जाता है, तो मनुष्य के अंदर दिव्य शक्तियों का जागरण होने लगता है। मनुष्य के अंदर का ईश्वरीय अंश जब जागता है, तो वह महात्मा, देवात्मा, ऋषि, सिद्धपुरुष जैसी सीढ़ियाँ चढ़ता जाता है। उसक अंदर सोया भगवान प्रकट होने लगता है और मनुष्य भगवान की तरह शक्तिशाली, ज्ञानवान और प्रेममय हो जाता है। इसी अवस्था में वह सोऽहम्, शिवोऽहम्, सच्चिदानंदोऽहम् जैसी देव वाणियाँ बोलता है और अयमात्मा ब्रह्म, प्रज्ञानं ब्रह्म, तत्त्वमसि जैसे वचनों को प्रत्यक्ष अनुभव करता है। इस शरीर में ऐसा कुछ भी संभव है, यह सचाई मनुष्य जीवन को बेशकीमती बना देती है।

मनुष्य जीवन को पशु ही नहीं देव योनि से भी श्रेष्ठ बताया गया है। ये दोनों भोग योनियाँ हैं। मात्र मनुष्य ही कर्मयोनि है। पशु अपने निम्न कर्मों को भोगते हैं और देवता अपने पुण्यकर्मों के सुखों का भोग करते हैं। अपने कल्याण व मुक्ति के लिए इस योनि में वे कुछ कर्म नहीं कर सकते। इसके लिए इन्हें भी मनुष्य शरीर में ही जन्म देना पड़ता है।

इन सब विशेषताओं के कारण हर युग में ऋषि, मुनि मनुष्य जीवन के सौभाग्य का गुणगान करते आए हैं, कि मनुष्य होश सँभाले और अपने हीरा जन्म का सही उपयोग करते हुए, इसे सफल और धन्य बनाने में जुट जाए। वेद, उपनिषद् के ऋषि मनुष्य को अमृत पुत्र कहकर पुकारते आए हैं। महाभारत में महर्षि वेदव्यास बड़े राज की बात बताते हुए कहते हैं कि इस धरती पर मनुष्य जीवन से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है।

मनुष्य भटका हुआ देवता

इस शरीर में जहाँ मनुष्य जीवन जीते हुए देवता और भगवान भी प्रकट हो सकते हैं, वहीं इस बेशकीमती जीवन को अभिशाप की तरह जीने व इसे बरबाद करने की दुःख और दुर्भाग्य भरी कहानी भी मनुष्य के साथ जुड़ी हुई

है। जहाँ दूसरे प्राणी, एक सामान्य-सा जीवन जीते हुए अपनी जीवन यात्रा पूरी करते हैं, वहीं मनुष्य अपने भीतरी दोष-दुर्गुणों और बाहरी वातावरण की बुराइयों के दोहरे दबाव में आकर ऐसी जिंदगी जीते देखा जाता है कि सोचने पर मजबूर होना पड़ता है कि यह इंसान है या पशु-पिशाच। जन्म लेते ही मनुष्य, शिशु रूप में भगवान की तरह निर्मल, निश्छल और निस्वार्थ होता है, किंतु माता-पिता की लापरवाही, गलत पढ़ाई-लिखाई, बुरी संगत और बिगड़े समाज के दोष भरे वातावरण की लपेट में आकर आमतौर पर वह बिगड़ने लगता है और अपने असली रूप से भटक जाता है। इस तरह मनुष्य को एक भटका हुआ देवता भी कहें, तो गलत नहीं होगा।

मनुष्य को भगवान ने कार्य करने के लिए इतना बढ़िया हाथ, सोचने के लिए इतना तेज दिमाग दिया है और पर्याप्त समय भी दिया है। यदि वह चाहे तो इन सबका ठीक-ठीक उपयोग करते हुए अपने जीवन का सुख-सौभाग्य अनुभव कर सकता है, किंतु बहुत सारे मनुष्य अपने हाथ-पैर और दिमाग का ठीक ढंग से इस्तेमाल नहीं कर सकते। आलसियों की तरह पड़े रहते हैं और जिंदगी को भाग्य के भरोसे छोड़ देते हैं। अत: दीन-हीन व दरिद्रता की हालत में पड़े हुए गया गुज़रा जीवन जीते हैं। जिंदगी जीने की बजाय एक काटने की वस्तु बन जाती है। आलसी कीड़े-मकोड़ों की तरह जिंदगी को किसी तरह ढोते फिरते हैं और दु:ख-कष्ट में दूसरों को या फिर भगवान को कोसते रहते हैं।

अधिकांश मनुष्यों के लिए जीवन का अर्थ खाना-पीना, बच्चे पैदा करना और परिवार का पालन-पोषण करते हुए किसी तरह अपने दिन पूरे करना होता है। पशुओं की तरह इस छोटे से दायरे के बाहर इनको न कुछ दिखाई देता है और न ही कुछ सूझ पड़ता है। किसी से सहानुभूति भी नहीं प्रकट कर पाते, अत: किसी का स्नेह-प्रेम भी नहीं मिल पाता। ऐसे में एकाकी नीरस जीवन जीते हैं।

यदि मनुष्य का स्वार्थ और अहंकार बढ़ा-चढ़ा हुआ हो, तो वह कई मुसीबतें खड़ी कर देता है। तब वह पशु स्तर के छोटे से दायरे को लाँघकर, ऐसे-ऐसे कारनामे कर दिखाता है कि पशु उससे बेहतर दिखने

लगता है। कम से कम वह दूसरों को वैसा नुकसान तो नहीं पहुँचाता और अपने छोटे स्वार्थ के दायरे में ही सिमटा रहता है, किंतु अब तो वह सारी सीमाएँ और मान-मर्यादाएँ तोड़ देता है। उसके कारनामे पिशाच स्तर के हो जाते हैं। लगता है कि जैसे उसके सिर पर कोई भूत सवार हो। ऐसे में वह न स्वयं चैन से रह पाता है और न ही दूसरों को सुख-चैन से जीने देता है। खुद हैरान-परेशान रहता है और साथ रहने वालों को भी दु:ख-कष्ट की आग में झोंकता है और जलते अँगारों पर चलने के लिए मजबूर करता है। इस तरह अपने अंदर छिपे देवता को भूला मनुष्य पशु से भी नीचे पिशाच-राक्षस स्तर पर गिरकर इसी जीवन में नरक की तरह घोर यातना झेलने के लिए विवश हो जाता है।

तीन भटकाव—मनुष्य जीवन को अपने असली रूप से भटकाने वाले दोष-दुर्गुणों की गिनती हजारों में हो सकती है, किंतु मोटे तौर पर ये इन तीन दोषों से पैदा होते हैं १. वासना, २. तृष्णा और ३. अहंता।

ये तीनों दोष मनुष्य को उसकी इंसानियत से भटकाकर पशु और राक्षस की तरह दु:ख-कष्ट भरा जीवन जीने के लिए मजबूर करते हैं और इनमें से एक भी ऐसा नहीं है कि जिसको व्यक्ति किसी हद तक संतुष्ट कर सके। जितना उनकी माँग पूरी करो, उनकी भूख उतनी ही बढ़ती जाती है और कमी ही कमी खटकने लगती है। हालात मृगतृष्णा में भटकने वाले हिरण की तरह हो जाती है। रेगिस्तानों में मृगमरीचिका की बात प्रसिद्ध है। सूर्य की किरणें बालू में पानी का तालाब होने का भ्रम पैदा करती हैं। पानी की तलाश में भटकता प्यासा हिरन इसको देख दौड़ लगाता है, किंतु पास आने पर कुछ भी नहीं मिलता। फिर सर उठाकर नजर दौड़ाता है तो दूर वही दृश्य देखता है। फिर दौड़ लगाता है, किंतु पास पहुँचने पर वही धोखा। बस इसी तरह प्यासा हिरन पानी की तलाश में भटकते-भटकते थक जाता है और प्यास तथा घुटन में दम तक तोड़ देता है।

ऐसी ही दुर्दशा वासना, तृष्णा और अहंकार की प्यास में भटकते मनुष्य की होती है। इनका भूत सिर पर कुछ यूँ ही हावी रहता है कि अपने ईमान व अकल को कुछ सोचने व करने का मौका ही नहीं मिल

पाता। तीनों भारी पत्थर की तरह मनुष्य की पीठ पर लदे रहते हैं और सही रास्ते पर एक भी कदम आगे नहीं बढ़ने देते। पानी में हलकी वस्तुएँ ही तैरती हैं, भारी तो इसमें डूब ही जाती हैं। ये नाव में छेद की तरह हैं, जिस पर बैठकर मनुष्य को नदी पार करनी है। नाव को डुबाने के लिए तो एक छोटा-सा छेद ही काफी होता है, फिर इसमें तीन बड़े छेद होने पर इसका क्या होगा, इसकी कल्पना की जा सकती है। लोभ की हथकड़ी, मोह की बेड़ी और अहंकार की जंजीरों से जकड़े आदमी की हालत बँधुआ मजदूर की तरह हो जाती है। उसकी सारी क्षमता बेकार हो जाती है। जब व्यक्ति की सारी शक्ति और सूझ इन्हीं के जंजाल में उलझकर नष्ट हो जाती है, तो जिंदगी में संतोषजनक करने के लिए कुछ शेष रहता भी नहीं। मनुष्य अपनी बिगड़ी आदतों का गुलाम हो जाता है। उसकी अपनी इच्छा, आजादी और खुशी कुछ बचती ही नहीं। वह तो कभी मन, तो कभी हालात के हाथों कठपुतली की भाँति नाचता रहता है।

वासना—वासना में कामुकता मुख्य है। इसमें बरती गई ज्यादती, जिंदगी की जड़ों पर कुल्हाड़े से किए जाने वाले वार की तरह घातक सिद्ध होती है। जननेंद्रिय का असली काम तो बहुत ही छोटा सा है। दिन भर में आमतौर पर इसका काम मूत्र त्याग होता है। दूसरा काम वंश वृद्धि का होता है, जिसमें इसको कभी-कभार ही जुटना पड़ता है, ताकि जीवधारी का वंश चलता रहे, किंतु यह मुख्य नहीं, गौण कर्म है, लेकिन अधिकांश मनुष्य प्रजनन का मूल लक्ष्य भूलकर वासना के लिए इसका गलत इस्तेमाल करते हैं। वासना की ललक में वे इससे जुड़ी सारी मान-मर्यादाओं को भूल जाते हैं। जीवनी शक्ति के इस खजाने का नाश करने की उतावली इस तरह बरतते हैं, मानों इसमें फायदा ही फायदा हो। चासनी में बुरी तरह से टूट पड़ने वाली मक्खी जिस तरह अपने पंख उसमें फँसाती है और बेमौत मारी जाती है, वैसी ही बुरी दशा कामुकों की होती है।

इस कार्य में पशु मनुष्य से अधिक समझदार निकलते हैं। वे कुदरत के नियम के अनुसार ठीक समय पर ही वंश वृद्धि का काम करते हैं। संयम-नियम से रहकर समझदारी का बेहतरीन उदाहरण देते हैं और

स्वस्थ तथा सुखी रहते हैं। मनुष्य इसको मनोरंजन और खेल मानकर घोर असंयम और मूर्खता भरा जीवन जीता देखा जाता है।

वासना आदमी को नींबू की तरह निचोड़ कर रख देती है। यह जिंदगी में सेहत, तंदरुस्ती और हँसी-खुशी जैसा सब कुछ निचोड़कर छिलके की तरह खोखला बनाकर छोड़ देती है। कमजोर शरीर तरह-तरह की बीमारियों का अड्डा बन जाता है। कमजोरी, थकान, खीज, आलस्य-प्रमाद आदि इस पर हावी रहते हैं। मन कभी भारी, उदास तो कभी चंचल, अशांत रहता है। किसी काम में ठीक से मन नहीं लगता। किसी विषय पर एकाग्रता भी सध नहीं पाती। ऐसे में न तो जीवन में कोई बड़ी सफलता की आशा की जा सकती है और न ही समाज में सम्मान श्रेय की, क्योंकि ऐसे में व्यक्तित्व अप्रामाणिक और अविश्वसनीय स्तर का ही रह जाता है, फिर ऊँचे आदर्शों पर चलने की बात तो सोच तक ही सीमित रह जाती है।

रोगी शरीर और कमजोर मन पर छोटी-छोटी बातें भारी प्रभाव डालती हैं। मिजाज, क्रोध, भय, ईर्ष्या, द्वेष, चिंता जैसे मानसिक आवेगों से अशांत और विक्षुब्ध ही रहता है, किंतु वासना की आग है कि शांत होती ही नहीं। अपनी बेहोशी की चरमावस्था में तो यह सारे सीमा बंधनों को तोड़ देती है। ऐसे-ऐसे आपराधिक और पैशाचिक दुष्कर्म कर बैठती है कि जिंदगी भर पश्चाताप की आग में जलना पड़ता है। वास्तव में अमर्यादित कामुकता मनुष्य जीवन को कलंकित कर उसे पतन के गर्त में पटक देती है। इसके वश में होना, अपने शरीर को चिता की अग्नि में अर्पित करने जैसा है। चिताग्नि तो देह को थोड़ी देर में ही जलाकर इससे मुक्त कर देती है, किंतु वासना तो जर्जर देह को यातना-कोठरी बनाकर इसे धीरे-धीरे सुलगने व तड़पने के लिए छोड़ देती है।

अतः अपने जीवन लक्ष्य के प्रति जागरुक और इसे सुधारने-सँवारने में उत्सुक हर मनुष्य का यह परम कर्त्तव्य बन जाता है कि जीवनी शक्ति के खजाने को बरबादी से बचाएँ और संयमित जीवन का आदर्श अपनाएँ।

तृष्णा—यह आदमी को जरूरत से ज्यादा धन-दौलत और सुविधाओं को इकट्ठा करने के लिए उकसाती रहती है। सोच यही रहती है कि जितना अधिक ये चीजें रहेंगी, हम उतना ही सुखी और प्रसन्न हो जाएँगे, किंतु यह ख्याल एक धोखा ही सिद्ध होता है।

इंसान की जरूरतें बहुत थोड़ी सी हैं। उसकी बनावट ऐसी है कि थोड़े में ही उसका गुजारा हो जाता है। पेट भरने, शरीर को ढकने और परिवार के पालन-पोषण के लिए जरूरी चीजों का इंतजाम कुछ ही घंटों की मेहनत-मशक्कत करके पूरा हो जाता है। बाकी समय का उपयोग अपना सुधार करने, अपनी योग्यता बढ़ाने और भगवान के काम में कर सकता है। इस तरह की जिंदगी जीने वालों के लिए कोई बड़ी दिक्कत नहीं आती, पर कठिनाई तब होती है, जब धन्ना सेठ बनने की और बहुत सारा ठाट-बाट बटोरने की सनक दिमाग पर चढ़ी होती है।

यह लालच आदमी को चैन से बैठने नहीं देती है। ऐसे आदमी के दिमाग में हर घड़ी धन कमाने और उसे कमाकर मौज-मस्ती करने की बात घूमती रहती है। इसके वश में हुए व्यक्ति के लिए पैसा ही भगवान बन जाता है और किसी भी तरह उसे जोड़ना उसकी पूजा बन जाती है। सुख की आशा में वह धन-दौलत और ठाट-बाट के ढेर लगाता जाता है, किंतु इसके नतीजे उलटे ही निकलते हैं।

सबसे पहले तो इसके रख-रखाव की चिंता हर समय परेशान किए रहती है, कि कहीं कोई चोर, डाकू, सेंधबाज आदि इस पर हाथ साफ न कर ले। फिर ईर्ष्यालु और दुश्मन-बैरी लोग चैन से नहीं बैठने देते। नीचा दिखाने और बदनाम करने की हर कोशिश करते रहते हैं। चापलूस, ठग आदि भी दोस्त बनकर घात लगाए बैठे रहते हैं। बहुत सारा माल-टाल आदतों को बिगाड़कर तरह-तरह के व्यसनों में उलझा देता है और पता ही नहीं चलता कब शराब, नशा, नाच-रंग, ताश-चौपड़, खर्चीले शौक आदि जिंदगी के अंग बनते चले जाते हैं। समझदार और सही वारिस न मिलने पर इतनी भाग दौड़ कर इकट्ठा की गई संपदा यूँ ही बरबाद होने का डर अलग से सताता रहता है, जो चैन से मरने भी नहीं देता।

धन-वैभव की चाह जितनी पूरी होती जाती है, यह उतनी ही बढ़ती जाती है। इंसान ईमानदारी से एक हद तक ही पैसा और ठाट-बाट कमा सकता है, पर जब इच्छा इंद्र-कुबेर की तरह ढेरों धन-वैभव पाने की हो, तो एक ही रास्ता बाकी बचता है और वह है बेईमानी, भ्रष्टाचार का रास्ता। जब लालच के नशे में अक्लमंद आदमी की मति ही मारी जाए, तो फिर उसे गलत रास्ते में जाने से कौन रोके? बस अनीति, भ्रष्टाचार के ढलवाँ रास्ते पर उसकी फिसलन शुरु हो जाती है। धन-दौलत और ठाट-बाट जितने बढ़ते जाते हैं, अपना स्वास्थ्य-शक्ति और ईमान-धर्म भी उतने ही खत्म होने लगते हैं, किंतु अपनी सारी शक्ति झोंकने पर भी उसकी इच्छा अधूरी ही रह जाती है। पूरी हो भी कैसे? यह खाई तो इतनी गहरी है कि हिरण्यकश्यप, रावण, वृत्रासुर, सिकंदर जैसे महा पराक्रमी अपना पूरा दमखम दाँव पर लगाकर भी इसको भरने में थोड़ा सा भी सफल न हो सके थे, फिर आम आदमी का क्या कहना? तृष्णा का यह कुचक्र इतना बड़ा, इतना भयानक और इतना अशांतिदायक है कि उसे अपनाकर मौज-मजा का स्वप्न कभी पूरा नहीं हो पाता।

दूसरा अत्यधिक मोह, अपने प्रिय लोगों के नाम पर ढेरों धन-वैभव और सुविधाओं को विरासत में छोड़ने के लिए मजबूर करता है, किंतु यह मोह हर तरह से अपने वारिसों को तबाह करने वाला ही साबित होता है। मुफ्त का माल किसी को भी पचता नहीं। वारिस लोग इसे पाकर आरामतलब और आलसी ही बनते हैं और विरासत को लेकर लड़ाई-झगड़ा, मार-काट सो अलग। बैठे-ठाले मौज-मस्ती की सुविधा सामग्री जोड़ना आखिर उनको निकम्मा और बेईमान बनाने वाली एक गलत नीति ही सिद्ध होती है। किसी के भविष्य से खिलवाड़ करने वाला ऐसा मोह किसी भी तरह से ठीक नहीं है। इसकी जगह बेहतर हो कि अपने परिवार के लोगों को अपनी मेहनत और ईमानदारी के साथ अपना निर्वाह करने वाला आत्मनिर्भर इंसान बनाया जाए और ऐसे संस्कार-विचार दिए जाएँ, जो उनके जीवन भर काम आएँ।

अहंता—यह अपने असली रूप का बिगड़ा हुआ चेहरा है, जो बेढंगा दिखावा करने के लिए उकसाता रहता है। अपने असली रूप

और औकात की जगह बाहरी चीजों से जुड़ने पर अपना आपा अहंकार का रूप ले लेता है। यह शारीरिक सुंदरता, होशियारी, ताकत, धन-दौलत, पद-अधिकार आदि किसी भी वजह से हो सकता है। इसके कई रूप हैं, पर मकसद एक ही है, वह है अपने को दूसरों से बड़ा साबित करना, उन पर अपनी छाप छोड़ना और ऐसा दिखावा करना कि दूसरों पर अपना रौब जमा सके। अहंकार के वश में आदमी दूसरों को घटिया मानता है और अपने बड़प्पन-महानता को साबित करने पर उतारू होता है। इसके लिए हर तरह के तरीके भी अपनाता है। यह मनुष्य से जुड़ी एक अजीब-सी गड़बड़ी है, जो उसकी कदम-कदम पर तरह-तरह के नाटक-नौटंकियाँ करने के लिए मजबूर करती रहती है। यह ऐसा धोखा है, जो अपने दिखावे के लिए पाखंड खड़ा करने के लिए भड़काता रहता है। मोटे अर्थों में घमंड, अकड़, गुस्सा, असभ्य व्यवहार, शेखीखोरी आदि इसके निशान माने जाते हैं, किंतु यह इससे अधिक गहराई और फैलाव लिए हुए है। फैशनबाजी, सजधज, ठाट-बाट, शृंगार, विज्ञापनबाजी, शादी-विवाह में होने वाले खर्च आदि इसी परिवार के सदस्य हैं। यह बड़प्पन प्रदर्शन की कमजोरी ही महिलाओं को अजीबोगरीब फैशनबाजी, लीपापोती करने और गहने लादने के लिए उकसाती रहती है। पुरुष भी ठाट-बाट के अनेकानेक जुगाड़ भिड़ाते रहते हैं। यह एक नशा है, जिसमें समझदारों को बचकानेपन और ओछेपन की गंध आती है।

जिस तरह अनावश्यक धन-दौलत, वैभव-संपदा इकट्ठा करने पर हजारों परेशानियाँ खड़ी होती हैं, ठीक वैसे ही अहंकार भी मनुष्य को कई तरह के झंझटों में उलझाए रहता है। अहंकारी व्यक्ति के बिना कारण ही शत्रु बढ़ते जाते हैं, क्योंकि उसमें अपनी बड़ाई और दूसरों की निंदा का भाव जोर मारता रहता है और दूसरा व्यक्ति भी बेमतलब क्यों अपने को घटिया माने? सामने शिष्टाचार या भयवश अहंकारी की बात मान भी ले, किंतु अंदर उसकी पहचान एक उथले-बचकाने, सनकी-ढीठ जैसे उपेक्षा और घृणा भरे भावों से ही करता है।

अहंकार का खेल-तमाशा बहुत महँगा ही पड़ता है। चकाचौंध पैदा करने के लिए स्वाँग और पाखंड खड़े करने पड़ते हैं। अहंकार जताने से ईर्ष्या ही भड़कती है। लड़ाई-झगड़े और कड़वाहट आमतौर पर इसी वजह से पैदा होते हैं। ऐसे व्यक्ति का न कोई दोस्त बन पाता है और न शुभचिंतक। समझदार व्यक्ति इसे दूर से ही प्रणाम करते हैं। बस चापलूस ही उसको घेरे रहते हैं। वे भी अपना स्वार्थ पूरा करने की फिराक में रहते हैं और इसके पूरा होते ही खिसक लेते हैं।

इसका मायाजाल ऐसा है कि इससे निकलना तो दूर इसको समझ पाना तक कठिन हो जाता है। कब इसने पूरे व्यक्तित्व को ढक लिया, पता ही नहीं चलता। इसी में उलझे साधु-महात्मा लोग तक अपनी महानता, साधना और सिद्धि का ढिंढोरा पीटते रहते हैं और भोले-भावुकों को अपने भ्रमजाल में फँसाकर अपना उल्लू सीधा करते रहते हैं। अहंकार मित्र को शत्रु बना देता है और अपने को पराया। दूसरों के हिस्से में श्रेय-पद न जाने देने के लिए उन्हें गिराने, बदनाम करने के कुचक्र रचता रहता है। हर कीमत पर अपने आपको बड़ा सिद्ध करना और इसके लिए एड़ी-चोटी तक पसीना बहाने जैसी कोशिशें इसी के बहकावे में होती हैं।

जीवन की बरबादी और पश्चाताप—आम आदमी का ज्यादातर समय और शक्ति काम-वासना, धन-दौलत इकट्ठा करने और अपने बड़प्पन के दिखावे की खाई खोदने और इसे भरते रहने में ही नष्ट हो जाती है। इसके बाद इतना समय और शक्ति शेष नहीं रह जाती कि कुछ सोच-विचार अपना सुधार करने, जिंदगी को निखारने, सँवारने और भगवान के काम में हाथ बँटाने का भी किया जाए। जब विचार ही नहीं उठता तो फिर इस रास्ते पर आगे कदम बढ़ाने की बात ही कैसे बने?

जिंदगी का यह कीमती अवसर अपनी रोजी-रोटी कमाने, शादी-विवाह करने, परिवार बसाने, बच्चों का पालन-पोषण करने में ही बीत जाता है। सारा ध्यान खाने-कमाने, लेन-देन, व्यवहार-व्यापार आदि में ही लगा रहता है। जिंदगी शारीरिक, आर्थिक, पारिवारिक और राजनीतिक दायरों में ही सिमटी रह जाती है। बस इसी ढर्रे में मनुष्य जीवन कोल्हू के

बैल की तरह घूमता रहता है और पहुँचता कहीं भी नहीं। अंधी भेड़ों के झुंड की तरह एक के पीछे दूसरी के चलने और खाई में गिरकर चोट खाने और चिल्लाने का क्रम ही बाकी रह जाता है। हैरानी की बात तो यह है कि अक्लमंद समझे जाने वाले लोग भी अपनी भलाई की बात नहीं समझ पाते। अपनी ही जड़ें खोदने में जुटे रहते हैं और मुसीबतें झेलते हैं। जितना बोझ उठता नहीं, उतना लादते फिरते हैं और इसके भार से पिसते फिरते हैं। जितना पेट हजम नहीं कर पाता, उतना ठूँसते हैं और पेट की पीड़ा से हल्ला मचाते रहते हैं।

ऐसी भटकाव भरी स्थिति को बुद्धिभ्रम ही कहेंगे, जो सीधे रास्ते को उलटा और उलटे रास्ते को सीधा मान बैठता है, जैसे कि द्रौपदी के भवन में जाने पर कौरवों को पानी की जगह जमीन और जमीन की जगह पानी दिखाई पड़ा था। जो भी हो कड़वी सचाई तो यही है, जिसमें अपनी मरजी से या हालात की मजबूरी में अधिकतर लोगों को अपनी जिंदगी का सफर पूरा करते देखा जाता है। भगवान के अंश होने के नाते अपने सुधार, निर्माण और परमार्थ के जिस रास्ते पर चलना था, वह तो छूट ही जाता है और उस सुख-शांति और आनंद के दर्शन भी नहीं हो पाते, जो इस रास्ते पर चलने से मिलते हैं।

मनुष्य यह देखते हुए भी कि यह नाशवान शरीर एक दिन मिट्टी में मिल जाना है, बाहरी सुखों के पीछे ही पागलों की तरह घूमता रहता है। बचपन खेलकूद में बीत जाता है, जवानी के नशे में मौज-मस्ती ही छाई रहती है। जब कुछ होश आने लगता है, तो परिवार बढ़ जाता है और इसी के पालन-पोषण में व्यस्त हो जाता है। जब कुछ समझ आने लगती है तो बुढ़ापा आ धमकता है। शरीर पर तरह-तरह के रोग हमला करते हैं, बिगड़ी आदतें और संस्कार गहरी जड़ जमा चुके होते हैं और वे अलग परेशान करते रहते हैं। तन, मन ढीले पड़ने लगते हैं। अब समझ आने पर क्या हो सकता है? समझदारी तो तब थी जब समय रहते अच्छी आदतों को अपनाकर सद्गुणों को इकट्ठा किया होता और अगली यात्रा संतोष के साथ पूरी करने की तैयारी की होती।

जब अंतिम घड़ी आती है तो विदाई के समय सिर पर पाप, पतन और बुरे कर्मों का भयंकर बोझ चढ़ा दिखाई देता है। घोर पछतावा, असह्य वेदना और भारी बेचैनी होती है, किंतु अब क्या हो सकता है ? खेल खत्म हो चुका होता है, जीवन समाप्त हो गया होता है, अवसर हाथ से निकल चुका होता है और सौदा बिक चुका होता है। इकट्ठा किया हुआ धन, वैभव, पुत्र-कलत्र और रौब-दाब आदि कोई साथ नहीं देता। जिनको अपना मानकर पाप की गठरी सिर पर लादते रहे, वे ही पराए हो गए। अब तो शरीर भी साथ नहीं देता। केवल अपने अच्छे-बुरे कर्मों का बोझ लादे अकेले ही सफर में आगे जाना होता है। अपनी वेशकीमती जिंदगी को यूँ ही बरबाद करने की गहरी समझ ऐसे मौके पर आती है, किंतु अब क्या होता? हीरा जन्म, कौड़ी मोल बिक चुका होता है और कीमती चंदन कोयले के भाव।

एक बार एक राजा शिकार खेलने एक जंगल में जाता है। वहाँ घने वन में शिकार करते-करते रास्ता भूल जाता है और शाम होने पर पास के एक किसान की झोपड़ी में रुक जाता है। वहीं अपनी रात गुजारता है और सुबह अपने रास्ते चल देता है। चलते-चलते एक परचा इस अनपढ़ किसान को थमाता है और समझाता है कि कोई परेशानी हो तो इस परची में लिखे पते को दिखाते हुए हमारे पास आ जाना। अगले वर्ष अकाल पड़ता है। सारी फसल नष्ट हो जाती है। किसान को परची वाली बात याद आ जाती है और इसके सहारे राजदरबार तक जा पहुँचता है। किसान की समस्या को सुनकर राजा सोचता है कि इसे धन दें तो कोई छीन न ले। बेहतर हो कि इसे इसकी झोपड़ी के पास वाला चंदन का बाग दे दें। सो उसे भेंट कर देता है। किसान सोचता है कौन रोज लकड़ी काट-काटकर इसे बेचने का झंझट मोल ले। क्यों न इस सबका कोयला बना लूँ और एक साथ खूब सारा धन कमा लूँ। चंदन के वृक्षों को काटकर उनका कोयला बनाने का काम पूरा होने ही वाला था कि एक दिन वारिश होती है। कोयला न बन पाने के कारण बची हुई कुछ चंदन की लकड़ियों को ही सर पर लादकर किसान बाजार चल देता है। चंदन अपनी खुशबू बिखेर

रहा था। ढेरों ग्राहक इकट्ठे हो गए। थोड़ी-सी लकड़ी हजारों में बिक गई, जबकि ढेरों कोयला कुछ ही रुपयों में बिक पाता था। जब इसका राज मालूम पड़ा तो किसान बहुत पछताया कि इतनी कीमती लकड़ियों का कोयला बना दिया।

आमतौर पर अपनी नासमझी में आदमी भी यही मूर्खता करता है। जिंदगी के बगीचे का हर रोज एक कीमती पेड़ की तरह है। इसकी कीमत न जानने के कारण इसे कोयला बनाकर बरबाद करता रहता है।

मनुष्य अपना भाग्य निर्माता आप—जीते जी भाग्य का रोना रोता हुआ, गला-सड़ा और दुर्गति-दुर्गंध भरा जीवन और मरते समय घोर पश्चाताप वाली गति, क्या यही मनुष्य जीवन की नियति है? क्या इस उलझन व भटकाव भरी हालत से निकलने का कोई रास्ता नहीं है? ऋषि-मुनि लोग प्राय: इसी उलझन को मायाजाल कहकर पुकारते हैं और उससे निकलने की चेतावनी देते हैं, पर उस दुर्भाग्य को क्या कहें, जो मूर्खता छोड़ने और समझदारी अपनाने की बुद्धि को उगने-उठने ही नहीं देता? बेशकीमती मनुष्य जीवन की दु:खभरी बरबादी की यही कहानी है।

हम अपनी दुर्गति-दुर्दशा और भटकाव की जिम्मेदारी दुर्भाग्य या दूसरों पर ठेलकर अपने लायक झूठा संतोष पा सकते हैं, किंतु उलझन एवं समस्या का समाधान नहीं होगा। संतोष व समाधान देने वाली सचाई यह है कि हम अपने लिए खुद ही जिम्मेदार हैं। आज हम जिस भी अच्छी-बुरी स्थिति में खड़े हैं, वह हमारे अपने ही पिछले अच्छे-बुरे कर्मों का फल है। इससे यह भी स्पष्ट है कि कल हम जो कुछ भी होंगे, वह हमारे आज के शुभ या अशुभ कर्मों का फल होगा। अत: कह सकते हैं कि मनुष्य खुद ही अपने भाग्य को बनाने या बिगाड़ने वाला है। उसका भाग्य उसके अपने हाथ में है।

इसी सचाई को उपनिषद् इस रूप में कहते हैं, मन ही मनुष्य के बंधन का कारण है और वही उसके मोक्ष का कारण है। बिगड़े हुए मन से बड़ा दुश्मन और कोई नहीं, इसी तरह सुधरे हुए मन से बड़ा दोस्त दूसरा कोई नहीं। वे यह भी स्पष्ट कहते हैं कि मनुष्य को अपना उद्धार खुद आप ही

करना होगा। भगवान बुद्ध भी इसी बात को 'अप्पो दीपो' भव के रूप में समझाते हैं, अर्थात् अपने दीपक आप बनो। मकड़ी की तरह उसको अपना फैलाया जंजाल खुद ही समेटना होगा। मकड़ी के पेट में एक द्रव होता है, जिससे वह अपने लिए एक जाल बुनती है। फिर इसी में उलझती-छटपटाती रहती है, पर जब उमंग उठती है तो अपना बुना हुआ जाल समेट-बटोरकर निगल जाती है और इससे मुक्त हो जाती है।

जहाँ तक ईश्वरीय सहायता की बात है, वह तो हर समय मनुष्य के साथ रहती है, पर वह तभी काम करती है, जब आदमी पहले अपनी सहायता आप करता है। निकम्मे, आलसी और कामचोरों को तो वह भी अपने भाग्य पर गलने-सड़ने के लिए छोड़ देती है। आदमी यदि सोच ले तो ऐसा कुछ भी नहीं है, जो वह कर न सके। वह बना ही उस धातु का है, जिसकी हिम्मत व इच्छाशक्ति के सामने कोई रुकावट टिक नहीं सकती। वह अपने हाथ से गिरने के लिए खाई खोदता है और चाहे तो उन्हीं हाथों से उठने के लिए सीढ़ियों वाला रास्ता भी बना सकता है अर्थात् मनुष्य अपने भाग्य को बनाने-सँवारने वाला स्वयं आप ही है।

जीवन को बनाने-सँवारने का संकल्प—अपनी जिंदगी की सुख-शांति और सफलता के लिए हर समझदार आदमी को अपनी स्थिति पर विचार करना ही चाहिए और हो सके तो वह हिम्मत भी करनी ही चाहिए, जिससे कि इसको बरबादी और सर्वनाश से बचाया जा सके और भगवान की इच्छापूर्ति के नेक रास्ते पर लगाया जा सके। यदि कहीं ऐसी इच्छा-उमंग दिल में जागने लगे व जोर पकड़ने लगे, तो समझना चाहिए कि अंदर भगवान का प्रकाश चमकने लगा और उसकी कृपा बरसने लगी।

अपनी गिरी हुई हालत से मुक्ति पाने व अपने को सुख-शांति वाले सही रास्ते पर चलाने की तड़प, व्याकुलता व टीस जाग उठे, तो सुधरने में देर नहीं लगती। तब उस भटकन से मुक्ति मिल जाती है, जो शरीर को ही अपना सब कुछ मान बैठी थी और इससे जुड़ी वासना, तृष्णा और इच्छाओं के इर्द-गिर्द ही अपना ताना-बाना बुन रही थी तथा पशु-पिशाच स्तर का

जीवन ज़ीने के लिए मजबूर किए हुए थी। फिर मनुष्य अपनी सही पहचान पाते ही उस शेर के बच्चे की तरह अपनी शान में जीने लगता है, जो गलती से जन्म लेते ही भेड़ के झुंड में जा मिला था। वहीं भेड़ के बच्चे के साथ वह बड़ा होता है और खुद को भेड़ का बच्चा ही मान बैठता है। एक दिन वहाँ से एक बड़ा शेर गुजरता है। भेड़ों के झुंड में शेर के बच्चे को देखकर उसे थोड़ी हैरानी होती है। हैरानी और बढ़ जाती है, जब वह उसको भेड़ की तरह मिमियाते और व्यवहार करते देखता है। शेर पास जाता है, तो झुंड के साथ शेर का बच्चा भी भागने लगता है। शेर उसको किसी तरह पकड़ लेता है और नदी के किनारे ले आता है। वहाँ पानी में उसकी शक्ल-सूरत को दिखाकर समझाता है कि वह भेड़ नहीं, शेर का बच्चा है। बस समझ आते ही शेर का बच्चा दहाड़ मारता है और शेर की तरह शान से जीने लगता है।

ऐसा होश आते ही रत्नाकर डाकू से वाल्मीकि ऋषि बन जाते हैं, क्रूर अशोक बुद्ध की करुणा से संदेशवाहक बन जाते हैं, कामुकता में अंधे विल्वमंगल संत सूरदास बन जाते हैं, वेश्या आम्रपाली धर्म के रास्ते पर चलने वाली भिक्षुणी बन जाती है। ऐसे ही अजामिल, अंगुलिमाल, गणिका आदि ने पिछले बिगड़े जीवन को छोड़ा और सही रास्ते पर चल पड़े। ऐसा होश आते ही मनुष्य उस मंजिल की ओर बढ़ जाता है, जिससे उसका बेशकीमती मनुष्य जीवन सफल और धन्य हो जाता है। तभी भ्रष्ट सोच और दुष्ट व्यवहार के अभ्यास को स्वीकार न करने का हिम्मत भरा संकल्प उभरता है और मनुष्य जीवन को सफल बनाने वाला सबसे बड़ा पुरुषार्थ बन पड़ता है। तभी संतोष के साथ जिंदगी की यात्रा को पूरा करने वाला सीधा रास्ता भी मिल जाता है।

बेहोशी में दोहरी नासमझी—जब तक यह बात समझ में नहीं आ पाती तब तक हम न वर्तमान को सँवार पाते हैं और न ही भविष्य का ध्यान रख पाते हैं। न इस जीवन को सुखी बना पाते हैं और न ही अगला जीवन। छोटे-मोटे आकर्षणों में उलझकर अपनी जीवनी-शक्ति को फुलझड़ी की तरह जलाकर नष्ट कर देते हैं, जो कुछ भी कमाते हैं उसी

को बिगड़ी आदतों में और व्यसनों में खर्च कर देते हैं। यदि जीवन के प्रति सही सोच रही होती, तो संयम-नियम से रहते हुए सादा जीवन जीते। थोड़े में ही गुजारा करते हुए बाकी बची हुई शक्ति को अच्छे कामों में लगाते। वर्तमान जीवन संतोष भरा होता और अपने सुखद भविष्य के प्रति भी निश्चिंत रहते।

एक राज्य का नियम था कि वहाँ राजा पाँच वर्ष के लिए चुना जाता था। इसके बाद उसे एक सुनसान टापू में छोड़ दिया जाता था, वहाँ न कुछ खाने-पीने का इंतजाम था और न ही रहने का। इस तरह सभी राजा वहाँ पर भूखे-प्यासे व ठंढ से तड़पते हुए मर जाते। ऐसे ही कई राजा मर चुके थे। अबकी बार एक समझदार राजा गद्दी पर बैठा। बैठते ही उसने अपने मंत्री को हुक्म दिया कि वह उस टापू का पता लगाए जहाँ पर पाँच साल बाद उसे भेजा जाएगा। इसका पता लगते ही, उसने वहाँ पर पानी का इंतजाम किया, कुएँ-बावड़ियाँ खुदवाई। जंगलों को साफकर तरह-तरह की फसलें उगाईं और फलदार पेड़ लगाए। एक महल और नगर भी बसाया, जिसमें लोग रह सकें। जब पाँच साल पूरे हुए तो राजा खुशी-खुशी वहाँ से चला गया और पहले से भी अधिक सुविधा-साधनों के बीच सुख-शांति से रहने लगा। अपने वर्तमान के साथ भविष्य को भी बनाने वाली इसी सूझ को समझदारी कहते हैं।

हमारे एक नहीं कितने ही जन्म हो चुके हैं। हम इस जन्म के अच्छे कर्मों द्वारा अपनी जीवन यात्रा को सफल बनाते हुए अगली यात्रा के लिए पुण्य-परमार्थ की कमाई जमा कर लें, तो यह कदम हर तरह से समझदारी वाला होगा, किंतु दुर्भाग्य है कि हम सभी जीवधारियों में सबसे बुद्धिमान प्राणी इस सूझ का परिचय नहीं दे पाते। सारी अकल खाली खेल-तमाशे में ही लगाकर रखते हैं और अपने अंदर झाँक ही नहीं पाते।

अक्लमंदों की मूर्खता—मनुष्य की अक्ल का कोई ठिकाना नहीं है। आए दिन वह अनेक समस्याओं का हल करती रहती है। अणु-परमाणु से लेकर विश्व-ब्रह्मांड तक उसकी पढ़ाई-लिखाई और सोच के विषय हैं। अमीबा से लेकर डायनासोर तक की गुत्थियों को वह हल कर

रही है, लेकिन मुख्य समस्या की ओर ध्यान ही नहीं दे पाती है कि जो बेशकीमती जीवन मिला है उसका उद्देश्य क्या है? और उसका सही उपयोग क्या है?

यह अक्लमंद आदमी दुनिया भर की जानकारियों को सिर पर लादे फिरता है। बड़ी-बड़ी डिग्रियों को लेकर बैठा है, कई विषयों का जानकार होने का दावा करता है, पर छोटा-सा प्रश्न हल नहीं कर पाता कि हम कौन हैं? यहाँ क्यों आए हैं? हमें क्या करना है? बेहोशी का नशा इस बुरी तरह चढ़ा हुआ है कि हर घड़ी कस्तूरी मृग की तरह बाहर ही खुशबू खोजता फिरता है, किंतु ध्यान अपनी नाभि की ओर जा ही नहीं पाता। बाहर खोज करते-करते थका-हारा आदमी अपनी असफलता और निराशा के साथ अपने भाग्य का रोना रोता रहता है।

इसी विषय में एक कहानी है कि एक बार एक गाँव से दस शेखचिल्ली पड़ोस के गाँव में मेला देखने जाते हैं। रास्ते में एक नदी पड़ती थी, जिसे पार करके ही रास्ता आगे बढ़ता था। सभी ने एक साथ नदी पार की। उस पार पहुँचने पर उनको शक हुआ कहीं कोई साथी नदी में बह न गया हो। अतः गिनती पूरी करने का विचार आया। सभी ने बारी-बारी से गिनती गिनी, पर संख्या हर बार नौ से आगे नहीं बढ़ रही थी। गिनती पूरी होती भी कैसे? गिनने वाले का सारा ध्यान तो बाहर दूसरों को गिनने में था और खुद को भूला बैठा था। सभी दुःखी होकर वहीं सिर पर हाथ धरकर बैठकर रोने लगे, कि अब क्या होगा? घर जाएँगे तो क्या जवाब देंगे? उसी समय एक समझदार राही वहाँ से गुजरा। उनकी व्यथा-कथा सुनकर बात उसकी समझ में आ गई। उसने सभी शेखचिल्लियों को एक लाइन में खड़ा किया और जोर-जोर से थप्पड़ मारकर एक, दो, तीन..... गिनती गिनने लगा। गिनती दस तक पूरी हुई, तो उन्होंने राहत की साँस ली।

कुछ ऐसी ही हालत, अक्लमंद मूर्खों की है जो दुनिया भर की जानकारी तो बटोरते फिरते हैं, किंतु अपने बारे में एकदम जीरो हैं, साथ ही और बड़ा जानकार होने का दंभ भरते हुए भाँति-भाँति के भ्रम फैलाते हैं।

अंदरूनी गुण ही महानता का सच्चा मापदंड—असली जानकार तो उसे ही कहा जाएगा, जो बाहरी जानकारियों के साथ अपने अंदर को जाने व अपने गुणों के विकास पर भी ध्यान देता हो, क्योंकि मनुष्य के जीवन में जितनी भी कठिनाइयाँ और दिक्कतें आती हैं, वे उसके अंदर छिपे हुए दोष-दुर्गुणों के कारण ही होती हैं। जितना हम अंदर अच्छे गुणों का विकास करते जाते हैं, उतने ही दुर्गुण कम होते जाते हैं और जिंदगी भी अधिक सरल, सीधी और हलकी-फुलकी होने लगती है। अंदरूनी गुणों के कारण ही मनुष्य महान बनता है। जिसमें जितने अधिक सद्‌गुण होंगे, वह उतना ही बड़ा माना जाएगा। दुनिया के सारे ठाट-बाट, वैभव-विलास और रौब-दाब उसके सामने हलके पड़ जाते हैं। ये सब तो कुछ समय तक महानता या बड़प्पन दिखाकर नष्ट हो जाते हैं।

मनुष्य शरीर से कितना ही ताकतवर हो जाए, बुद्धि के बल पर कितना ही बड़ा जानकार या विद्वान बन जाए और धर्मशास्त्रों का पंडित बनता फिरे, किंतु यदि उसके अंदर अच्छे गुणों की कमाई नहीं है, तो इसका व्यक्तित्व अधूरा ही रह जाता है। अंदरूनी गुणों के विकास के साथ यह कमी-पूरी होने लगती है। इसके साथ जो शांति और आनंद मिलने लगता है, उसका एक सुख दुनिया के करोड़ों सुखों से बढ़-चढ़कर होता है। ऐसे ही व्यक्ति सही नेतृत्व करते हैं और लोगों का मार्गदर्शन करते हैं। गरीब फकीर होने पर भी बड़े-बड़े महलों वाले उसके पैरों में गिरकर दया की भीख माँगते हैं।

मनुष्य शरीर को पाकर यदि हम इस जीवन में सद्‌गुणों के विकास पर ध्यान नहीं दे पाते हैं, तो फिर क्या मनुष्य शरीर और क्या पशु शरीर? पशु तो फिर भी बेहतर सिद्ध होते हैं, जो अपने कर्मों को भोग कर इसके बोझ से हलका होकर जाते हैं तथा अगली यात्रा को सरल बना देते हैं। जबकि मनुष्य तो अपने ईमान और धर्म से भटकने पर जो बुरे कर्म करता है, वे उसके इसी जीवन को नरक जैसा बना देते हैं और मरते समय पापों की

भारी गठरी लादकर अगली यात्रा को और कठिन बना देते हैं। ऐसे में जिंदगी उसके लिए घाटे का सौदा ही सिद्ध होती है।

सामान्य जीवन को भी सफल बनाएँ—आमतौर पर सामान्य लोगों का कोई खास लक्ष्य नहीं होता। खाना-पीना, नौकरी-धंधा, लेन-देन, परिवार आदि सामान्य-सा जिंदगी का ढर्रा पूरा करते हुए अपनी यात्रा पूरी करते हैं।

इस सामान्य जीवन को भी मनुष्य सफल बना सकता है, यदि वह इसमें अपने परिवार-जनों के प्रति आवश्यक मोह न पालते हुए अपनी जिम्मेदारी को निभाएँ और अपने गुजारे भर से संतुष्ट रहकर सीधा-सादा जीवन जिएँ। इसमें ध्यान इतना भर रखना होगा कि इस सामान्य सी जिंदगी को इस तरह से जिएँ कि इसे बरबादी के रास्ते से बचाए रखें और एक आदर्श जीवन जीते हुए अपनी यात्रा पूरी करें। ठीक ढंग से इसका निर्वाह करते हुए हमें जीवन-लक्ष्य को सिद्ध करने के पर्याप्त अवसर मिलें। इतने भर से हम सामान्य जीवन को भी एक प्रशंसनीय और अनुकरण योग्य सफल जीवन बना सकते हैं।

जिसने जिंदगी को निराशा, आँसुओं और पश्चाताप से उबारकर इसे उम्मीद, उत्साह और मस्ती के साथ जिया; उसने मानों सफल जीवन जीकर जीवन लक्ष्य पा लिया। जिसने संतोष के साथ और हँसते हुए जिंदगी की यात्रा से विदाई ली, उसका जीवन सफल ही माना जाएगा। इसके विपरीत जिसने जिंदगी रोते, बिलखते, तड़पते और तरसते हुए पार की, उसे घोर विफल ही माना जाएगा।

सफलता का सही आधार-आंतरिक प्रसन्नता—बाहरी नजर में कोई व्यक्ति कितना ही सफल क्यों न दिखे, इतने भर से उसके जीवन को सफल नहीं कह सकते। सफल जीवन का सही-सही माप उसकी जिंदगी में घुली प्रसन्नता की खुशबू ही हो सकती है और यह भीतरी गुणों के विकास करने पर ही महकती है। जिंदगी की असली सुंदरता भी तभी निखरती है।

सच कहें तो प्रसन्नता ही जिंदगी की सफलता और सुंदरता का दूसरा नाम है। जिस जिंदगी में हँसी-खुशी, उत्साह-उल्लास नहीं हो, उसमें दुनिया भर के सुख व ठाट-बाट भी क्यों न भरे हों, जीवन हीरे-मोती से क्यों न जड़ा हुआ हो, सुंदर नहीं कहा जा सकता। कोठी-बंगले, मोटर-गाड़ी, सजे-धजे कमरे, सुंदर वस्त्र, सोने-रत्नों से भरी तिजोरियाँ और रूप-रंग से भरे तामझाम आदि किसी को बाहर से देखने पर आकर्षक लग सकते हैं, किंतु इन्हीं में यदि सुख-चैन होता, तो इनमें रहने वाले दुःख-दर्द से कराहते हुए, अपने हाथों जिंदगी को बरबाद नहीं करते। इन सबके बीच भी जिंदगी तभी सफल होती, जब प्रसन्नता पहले से ही अपने अंदर रहती।

जिंदगी का असली मजा वैभव में नहीं, आंतरिक प्रसन्नता में हुआ करता है। जिसकी सोच, आचरण और स्वभाव जितना शुद्ध, शालीन और अच्छा होगा, उसका जीवन उतना ही सफल व सुंदर होगा। जो दोष-दुर्गुणों से भरा हुआ है, वह कितना भी धनी-मानी, शान-शौकत वाला, सुंदर शरीर वाला क्यों न हो, उसको सुंदर नहीं कहा जा सकता। इसकी जगह सीधा-सादा, देखने में भद्दा किसान ही सही, यदि वह शांत-प्रसन्न और शिष्ट-सभ्य है, तो उसको अधिक सुंदर जीवन वाला कहा जाएगा।

भगवान की चापलूसी का भटकाव—बिना मेहनत, बिना पसीना बहाए ही कुछ लोग मालामाल होना चाहते हैं। सीधे रास्ते पर चलने की बजाय शार्टकट की खोज में रहते हैं और अक्सर पगडंडियों में भटक जाते हैं। भगवान को चापलूसी पसंद मानकर पूजा-पत्री द्वारा उसको खुश करने व अपनी झोली भरने का भ्रम एक ऐसा ही बहुत बड़ा भटकाव है। भ्रम में यह सोच बैठते हैं कि भगवान प्रसन्नता का भूखा है और चापलूसी करने से खुश हो जाता है। इसी ख्याल से पूजा, अर्चना, कीर्तन-वंदना करके, कर्मकांडों की लकीर पीटकर उसको खुश करने और जीवन उद्देश्य प्राप्ति तक का झूठा संतोष कर बैठते हैं, किंतु उन खेल-तमाशों से हाथ कुछ आता नहीं। खीझ और निराशा ही पल्ले पड़ती है। इस नाटक

का अंत भगवान को भला-बुरा कहने और नास्तिक बन जाने पर होता है। मोटी समझ की बात है कि जब खुशामद करने, नाक रगड़ने या रिश्वत देने से हम किसी समझदार दुनियादार का प्यार-आशीर्वाद नहीं पा सकते, फिर भगवान को कैसे खुश कर सकते हैं ? छोटी-मोटी खुशामद, चापलूसी से खुश होना तो ओछे लोगों का स्वभाव होता है।

भगवान को ऐसी सोच का मान बैठना, वास्तव में हमारी अपनी बचकानी सोच का नतीजा होता है। जबकि भगवान तो समझदारी और न्याय का सच्चा रूप है। उसका आशीर्वाद और प्रेम तो सिर्फ अपनी जिम्मेदारी व काम को सही ढंग से पूरा करने वाले और अच्छे आचरण वालों के लिए सुरक्षित रहता है। भगवान ने इंसान को अपना जगत-उद्यान इसलिए सौंपा है कि वह चतुर माली की तरह इसको हरा-भरा और फला-फूला बनाए रखने के लिए अपनी शक्ति भर कोशिश करे। उसे इसलिए जन्म नहीं दिया है कि खाली उसका नाम रटता रहे और फूल-पत्तियों को तोड़कर उसकी मूर्ति पर चढ़ाता फिरे।

भगवान सिर्फ यह देखते हैं कि किसने क्या किया? उसे इतनी फुरसत नहीं है कि यह गिना करे कि किसने हमारी प्रशंसा में क्या-क्या कहा। भगवान के दरबार में मनुष्य का कर्म ही देखा जाता है, कर्मकांडों का खिलवाड़ नहीं। वह तो एक ही तराजू पर सबको तोलता है कि किसने इंसानियत की शान के साथ जीवन जिया और किसने बुरे कर्मों द्वारा इसे बदनाम किया।

अपनी जिंदगी को सुधारने-सँवारने पर ही हम उसके अपने बन सकते हैं। भगवान केवल उसी की मदद करता है, जो अपनी मदद के लिए खुद तैयार रहता है। योग्यता न होने पर हाथ पसारने, नाक रगड़ने या गिड़गिड़ाने से अपना उल्लू सीधा करने की चालाकी यहाँ काम नहीं देती। पूजा-पाठ और कर्मकांड का मकसद सिर्फ भगवान की इच्छा को दिलो-दिमाग में मजबूती से जमा लेना और अपने आप में अधिक से अधिक शुद्धता, सचाई, समझ और हिम्मत पैदा करना है। इतने भर से हमारी जिंदगी का उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता और न ही भगवान खुश हो

जाता है। भगवान को खुश करने के दो ही तरीके हैं, १. हम अपनी सोच, चरित्र व आचरण-व्यवहार में कितनी शुद्धता, उदारता और सचाई भर पाते हैं? २. उसकी इस विश्व-वाटिका को सजाने-सँवारने में कितना बढ़-चढ़कर अपना योगदान दे पाते हैं?

जीवन देवता को साधें व मनोकामना पूरी करें—दु:ख-दरिद्रता से बाहर निकलने और जिंदगी को सुखी-खुशहाल बनाने के लिए कई लोग तरह-तरह के देवी-देवताओं का पूजा-पाठ, ध्यान-जप करते रहते हैं। सोचते हैं कि वे संतुष्ट होकर आशीर्वाद-वरदान देंगे और मनोकामनाएँ पूरी करेंगे। इसमें वे कितने सफल हो पाते हैं, कुछ कह नहीं सकते, क्योंकि यहाँ सब कुछ बाहरी शक्तियों की इच्छा पर निर्भर करता है, इसमें सेवक की क्या मर्जी? वह तो अनुनय-विनय ही कर सकता है। आमतौर पर इसमें खीझ-निराशा और अनास्था ही हाथ लगती है, किंतु इस धरती पर एक ऐसा देवता जरूर है, जिसकी साधना कभी बेकार नहीं जाती। वह अपने भक्त को कभी निराश नहीं करता। वह हाथों-हाथ मेहनत का फल देता है। इस देवता की खोज के लिए हमें बाहर भटकने की जरूरत नहीं, यह है हमारा सबसे नजदीकी जीवन देवता। इसको यदि हम सही ढंग से साध लें, तो यही कल्पवृक्ष बन जाता है, जिसके नीचे बैठने से मन की सभी इच्छाएँ पूरी हो जाती हैं। अत: बाहर भटकने की बजाय, जरूरत इतनी भर है कि हम अपने आपको सँभालें, अपने को सुधारते व सँवारते हुए जीवन देवता की साधना करें।

जो इस सचाई को जितनी जल्दी समझ जाता है, उसे उतना ही बड़ा सौभाग्यशाली माना जाएगा। मनुष्य जन्म से जुड़े भाँति-भाँति के उपहार, सुख व आनंद का लाभ ऐसे ही लोगों को मिलता रहा है और मिलता रहेगा। इसी जीवन देवता की साधना करने पर छोटे-छोटे सामान्य से लोगों को इतिहास पुरुष बनने का गौरव मिला है। महात्मा गाँधी शरीर से दुबले-पतले थे। सिर्फ ९८ पौंड की काया वाले गाँधी जी में जीवन देवता की साधना से ऐसी प्रचंड शक्ति जागी कि ब्रिटिश राज हिल उठा था। अब्राहम लिंकन,

मार्टिन लूथर किंग, जार्ज वाशिंगटन आदि भी पहले सामान्य से इंसान थे, किंतु जीवन देवता की साधना के बाद वे कहाँ से कहाँ जा पहुँचे।

जीवन के हर क्षेत्र में ऐसे उदाहरण भरे पड़े हैं। इसी देवता की साधना करने पर सी. वी. रमन, जगदीशचंद्र बसु, आइन्स्टीन, मार्क्स, मैडम क्यूरी, एडीसन आदि वैज्ञानिकों को जो उपलब्धियाँ मिलीं, उसके लिए उन्हें किसी अन्य देवी-देवता की मनुहार-गुहार नहीं करनी पड़ी थी। आज जो वैज्ञानिक उपलब्धियों की चकाचौंध चारों ओर दिखती है, यह मनुष्य की क्षमता का मात्र दस प्रतिशत हिस्से का कमाल है। जब बाकी ९० प्रतिशत भाग को भी जगाया जाएगा, तो इसके चमत्कार की कल्पना की जा सकती है? जैसे ब्रह्मांड का छोटा रूप परमाणु है, वृक्ष छोटे से बीज में सुरक्षित रहता है। वैसे ही मनुष्य के अंदर भगवान की सारी शक्तियाँ दबी पड़ी हैं। इनको जगाया जाए, तो ये ऋद्धि-सिद्धियों के रूप में प्रकट होती हैं। जीवन देवता की साधना द्वारा ही ऋषि-मुनि, योगी, तपस्वी, सिद्ध पुरुष आदि इन शक्तियों के स्वामी बनते हैं।

आम आदमी उस कोयले के अंगार की तरह सामान्य सी अवस्था में पड़ा रहता है, जिस पर राख की मोटी परत चढ़ी रहती है, पर जब इस राख को हटाया जाता है, तो अपनी चमक और गरमी देने लगता है। ऐसे ही जीवन देवता की साधना करने पर मनुष्य के अंदर अपना असली रूप प्रकट होने लगता है, जो कि स्वयं भगवान का अंश है।

इसके जागने के साथ मनुष्य के अंदर वह चुंबक पैदा होने लगता है, जो अपने विकास और सफलता के लिए आवश्यक चीजों, व्यक्तियों और परिस्थितियों को अपनी ओर खींचता है। जैसे पेड़ की आकर्षण शक्ति बादलों को खींचकर बरसने के लिए मजबूर करती है, खानों में धातुएँ अपनी जाति के कणों को दूर-दूर से खींचकर पास इकट्ठा करती हैं, खिलते फूल अपने चुंबक से मधुमक्खी, तितली और भौरों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं, इसी प्रकार जीवन देवता को साधने पर पैदा हुआ चुंबक ईश्वर की शक्तियों को बुलाता है और आशीर्वाद देने के लिए विवश करता है।

दिलों की आवाज को सुनें और जीवन उद्देश्य समझें— व्यावहारिक जीवन में कोई भी नीचे नहीं गिरना चाहता। हर व्यक्ति की इच्छा ऊपर उठने की, आगे बढ़ने की होती है। सभी अपने को बड़ा ही साबित करना चाहते हैं। इसके लिए तरह-तरह की कोशिशें भी करते हैं और तरह-तरह के प्रमाण भी जुटाते रहते हैं। मनुष्य की ऊँचा उठने की चाह एक स्वाभाविक धर्म भी है, किंतु व्यक्ति से पूछने पर कि उसका जीवन उद्देश्य क्या है ? इसको पूरा करने की उसने क्या योजना बनाई है ? आदि प्रश्न पूछने पर कोई संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाता। अधिकांश इन प्रश्नों की गहराई तक नहीं पहुँच पाते और अपना लक्ष्य स्पष्ट न होने के कारण ही हमारी अधिकांश शक्तियाँ बिखरी और बेकार पड़ी रहती हैं और बात सीधी-सी है। महानता मनुष्य के अंदर छिपी हुई है और प्रकट होने के लिए अपना रास्ता खोज रही है, किंतु बाहरी आकर्षणों और कामनाओं में उलझा मनुष्य इस अंदर की इच्छा की उपेक्षा करता रहता है। ठुकराई और अपमानित इच्छा चुपचाप दबी पड़ी रहती है और मनुष्य केवल बाहरी प्रपंचों में उलझा रहता है।

वास्तव में मनुष्य के हृदय में ईश्वरीय शक्ति-केंद्र मौजूद है। इस केंद्र में ईश्वसीय संदेश लगातार आते रहते हैं। जिनका पालन करने-पर हमारे गुणों का विकास होता है, बुद्धि तेज होती है, पुण्य की पूँजी बढ़ती जाती है, गहरी समझ पैदा होती है और आत्मविश्वास बढ़ता है, पर मन में भागदौड़ लगाती वासनाओं और कामनाओं के शोर में इसके संदेशों की अनदेखी हो जाती है और मनुष्य जीवन-लक्ष्य से भटककर पगडंडियों में ठोकर खाता फिरता है। यह अंदर की ध्वनि इतनी नाजुक होती है कि इसे दबाना आसान होता है, पर इतनी साफ होती है कि इसके बारे में गलतफहमी नहीं हो सकती। यदि हम अपने दिल की इस आवाज के रूप में ईश्वरीय संदेश को सुनने व जानने के बारे में जागरूक होने लगें, तो धीरे-धीरे हमारा जीवन-लक्ष्य स्पष्ट होने लगेगा और पगडंडियों में भटकने की बजाए राजमार्ग का सीधा रास्ता मिल जाएगा।

सादा जीवन-उच्च विचार—जीवन लक्ष्य के रास्ते पर आगे बढ़ने के लिए सादा जीवन-उच्च विचार का सिद्धांत हर दृष्टि से सही है। शान-शौकत व धन बटोरने की ललक और अति आकांक्षा मनुष्य को सही रास्ते पर एक कदम भी आगे नहीं बढ़ने देती। बड़प्पन का नशा सभी नशों से बुरा नशा माना जाता है। अपने ठाट-बाट और शान-शौकत को दिखाकर जिस इज्जत और सुख की आशा व्यक्ति करता है, उसकी एक किरण तक कहीं दिखाई नहीं पड़ती। उलटी ईर्ष्या ही भड़कती है। साथियों की तुलना में बहुत अधिक विलास-वैभव इकट्ठा करने से इज्जत कहाँ मिल पाती है ? भूखों की मंडली में कोई रसमलाई चाटता फिरे, तो वह सौभाग्यशाली होने का श्रेय कहाँ ले पाता है ? उलटा आक्रोश बरसता है और निष्ठुरता का आरोप चढ़ता है। कभी-कभी तो इसकी चपेट में आक्रमण सहने और कष्ट उठाने की नौबत तक आ जाती है। इस विषय में सादा जीवन-उच्च विचार का सिद्धांत ही ऐसा स्वर्णिम सूत्र है, जिसमें जिंदगी की शान, मान और मर्यादा जुड़ी हुई है और प्रसन्नता के सभी सूत्र भी भरे पड़े हैं।

सादगी का अर्थ है—मितव्ययिता और बिना विलासी वैभव का हलका-फुलका जीवन। इसके लिए औसत भारतीय स्तर का मापदंड मानकर चलना होगा। नहीं तो पता ही नहीं चलेगा कि जिस वैभव का उपयोग चल रहा है, वह आवश्यक है या नहीं, ठीक है या गलत। जिसकी अपनी तृष्णा बहुत अधिक बढ़ी-चढ़ी हो, उसके लिए यह अनुमान लगा सकना कठिन है कि औसत मनुष्य को किस स्तर का गुजारा करना पड़ता है। वे सदा धन कुबेरों के सपने देखते हैं और तस्करों, धन-लोलुपों और निष्ठुरों के द्वारा अपनाए जाने वाले वैभव-विलास को स्वाभाविक मानते हैं।

सादा जीवन-उच्च विचार के अनुसार हमें अपनी आकांक्षाओं को इतना समेटना होगा कि संसार में जितने साधन हैं, उन्हें मिल-बाँटकर खा सकें। हर किसी के हिस्से में गुजारे जितना आ सके। न्यूनतम अपने लिए और बाकी ईश्वरीय कार्य के लिए. लोक कल्याण के लिए, यही सादा जीवन उच्च विचार का सार है। औसत भारतीय स्तर का जीवन जीते हुए

पूरी शक्ति के साथ मेहनत की जाए और जो निर्वाह से अधिक हो, उसे अच्छे कामों में लगा दिया जाए।

महानता के लिए क्षुद्रता का त्याग करना ही होगा— जीवन लक्ष्य के श्रेष्ठ पथ पर आगे बढ़ने के लिए बुराइयों और दोष-दुर्गुणों का त्याग करना ही पड़ेगा। यही ऋषियों की परंपरा रही है। बुद्ध, गाँधी ही नहीं महानता के रास्ते पर चलने वाले हर राही को पहला प्रयास यहीं से शुरु करना पड़ा है। जिस त्याग-वैराग्य की जरूरत की बातें शास्त्रों में श्रेय मार्ग पर चलने वालों के लिए कदम-कदम पर बताई गई हैं, उनका सार यही है कि जब तक तृष्णा से पिंड न छूटेगा, तब तक श्रेष्ठता में मन न लगेगा और न ही शरीर साथ देगा। लगन वहीं लगी रहे, तो फिर लकीर पीटने जैसी बात बाकी रह जाती है। इस झुनझुने से अपने आपको बहलाया-फुसलाया भर जा सकता है। हमें दो में से एक को चुनना होगा, गलत सोच भरे ओछे जीवन को या अच्छे विचारों से भरे सात्विक, सौम्य और महान् जीवन को।

बुराई शुरु में आकर्षक लगती है, पर इसके नतीजे घातक विष की तरह भयंकर कष्ट देने वाले ही निकलते हैं। जबकि अच्छाई का रास्ता बीज की तरह गलने जैसा है, जिसमें कुछ समय बाद अंकुरित होने, लहलहाने और फलने-फूलने का मौका निश्चित रूप से मिलने लगता है। नासमझ तात्कालिक आकर्षणों के लिए आतुर, आटे के लालच में गला फँसाकर बेमौत मरने वाली मछलियों का उदाहरण बन जाते हैं। बहेलियों के जाल में दाने के लालच में फँसने वाली चिड़ियों की तरह उलझ जाते हैं। दूसरी ओर किसान, विद्यार्थी और व्यवसायी की तरह अपनी मेहनत को सही रास्ते में और अच्छे कामों में लगाने वाला एक दिन कीमती फसल से अपने कोठे भरता है।

औसत नागरिक स्तर का जीवन जीते हुए सादा जीवन-उच्च विचार का रास्ता हर व्यक्ति के लिए अच्छे नतीजे देने वाला ही सिद्ध होता है। इसमें अपना कल्याण और दूसरों का भला, दोनों ही लक्ष्य सिद्ध होते हैं।

अंदर संतोष मिलता है, तो बाहर सम्मान। विश्व-वाटिका की देख-रेख में निभाई गई माली की ईमानदारी, जिम्मेदारी के लिए भगवान का आशीर्वाद और इनाम भी तभी मिलता है।

नरक से बाहर निकलें, स्वर्ग अपने अंदर ही पाएँ—जब हम मनुष्य स्तर से गिरकर पशु और पिशाच स्तर की जिंदगी जीते हैं, तो वासना, तृष्णा और अहंता जैसे दोष-दुर्गुणों का आवेश इस तरह सिर पर चढ़ जाता है कि मनुष्य वह सब कुछ करता है, जो नहीं करना चाहिए था। ऐसी गिरी हुई सोच व आचरण का नतीजा शारीरिक और मानसिक रोगों के रूप में सामने आता है। चारों ओर अपयश और अविश्वास का माहौल बनता है। हृदय पश्चाताप की आग में झुलसता रहता है। बाहर राजदंड, समाज दंड और प्रतिशोध का डर अलग से सताता रहता है। अपनी मान-मर्यादा को तोड़कर किए बुरे कर्मों के फल का मिला-जुला रूप ही वह नरक बन जाता है, जिसमें घोर यातना, असह्य पीड़ा और सर चकराने वाली दुर्गंध भरी होती है।

ऐसी नरक की यातना भोगने का कष्ट भरा अनुभव जिसको भी मिला हो, उसे विचार करना चाहिए कि ऐसा क्यों है? क्या इस कष्ट से छुटकारा नहीं मिल सकता? विचार करने पर स्पष्ट हो जाएगा कि इसका एकमात्र कारण अपने शरीर को जरूरत से ज्यादा महत्व देना है। हम उसी को अपना असली रूप मान बैठते हैं और उसी को सुखी बनाने के लिए घटिया और नीच कर्म करते रहते हैं, जिसका फल आखिर में ऐसे हालात खड़े करता है, जिसमें हमें तपते नरक में झुलसने के लिए मजबूर होना पड़ता है।

इस नरक से बचने व इसी जीवन में स्वर्ग जैसा सुख पाने का एक ही रास्ता है और वह है—अपनी सोच के तरीके में बदलाव। हमें अपने शरीर की जगह अपने असली रूप को महत्त्व देना होगा, अपने ईश्वरीय अंश को जगाना होगा व अच्छे गुणों को बढ़ाना होगा। शरीर को जीवन यात्रा के एक यंत्र के रूप में ही जरूरी ध्यान दिया जाए और अपनी सौंपी गई जिम्मेदारी के प्रति जागरुक रहें।

अपने को ईश्वर का अंशधर मानने और अपनी सोच, स्वभाव और व्यवहार को इसके अनुरूप ढालने की कोशिश ही उस शक्ति को जगाती है, जो नरक में भी स्वर्ग खड़ा कर देती है। इसी आधार पर संत इमर्सन ने कहा था कि मुझे नरक में भेज दो, मैं वहाँ भी स्वर्ग बना दूँगा। अच्छी सोच स्वर्ग का रास्ता खोलती है, तो घटिया सोच नरक का। सुधरी हुई सोच के साथ कर्म भी सुधरने लगते हैं। सीधे रास्ता पकड़ने पर भटकने की गुंजाइश नहीं रहती। इसी तरह से डर और आकर्षण भी धीरे-धीरे हलके पड़ने लगते हैं।

शानदार सोच और श्रेष्ठ आचरण की पर्याप्त मात्रा अपनाना ही देव जीवन है। भगवान मनुष्य से इसी जीवन की उम्मीद करता है। हर पिता अपने पुत्र से यही चाहता है कि अपनी परंपरा और प्रतिष्ठा बनी रहे। भगवान की भी अपने युवराज से यही आशा है कि अपने अंदर के अच्छे गुणों वाले ईश्वरीय अंश को जगाए, उसको जिंदा करे और श्रेष्ठ जीवन जिए, जिससे कि उसके आस-पास का वातावरण भी स्वर्ग जैसा सुंदर और मधुर बन जाए। मनुष्य को दुनिया की सबसे श्रेष्ठ रचना बनाकर भेजने का यही उसका उद्देश्य भी है।

जो हाथ में है, उसको सँभालें—जो बीत गया वह यदि पीड़ा, दुःख देने वाला और असंतोष जनक रहा हो, तो भी इतनी गुंजाइश अभी बाकी है कि जो हाथ में बचा है, उसको सँभाला जाए और उसका बेहतरीन उपयोग किया जाए, जिससे पिछली बिगाड़ का भी सुधार हो जाए। भूल समझ आने पर उलटे पैरों लौट पड़ने में कौन-सी बुराई है? गिनती गिनना भूल जाने पर दुबारा नए सिरे से गिनने में कैसा संकोच?

नए सिरे से अपनाई गई अच्छाई इतनी शानदार होती है कि इसके उभार से पिछले दिनों बरती गई को दबाया-दबोचा जा सकता है। जो खाई पिछले दिनों खोदी गई थी, उसको भरने की कोशिश नए सिरे से चल पड़े, तो ऐसी जमीन तैयार हो सकती है, जिस पर नया भवन खड़ा किया जा सके और नई फसल उगाई जा सके।

हृदय में उठने वाली नेक उमंग के अनुसार नई जिंदगी जीने का मन बनने लगे, तो इसको बनाने-सँवारने का रास्ता भी देर-सबेर मिल ही जाता है। बल्कि निश्चय पक्का होते ही इसको बदलने में देर नहीं लगती। ऊपर उठने का निश्चय बनने पर खुद भगवान अपने लंबे हाथों को पसारकर डूबते को तारने में कोई कसर नहीं छोड़ते। ऊपर उठने वालों को भगवान ने हमेशा ही सहारा दिया है। अपने जीवन लक्ष्य के प्रति समर्पित, संकल्पित और कटिबद्ध इंसान में से किसी को भी बीच धार में डूबना नहीं पड़ा है। महामानव-देवमानवों के उदाहरण इतिहास के पन्नों में जहाँ-तहाँ बिखरे पड़े हैं। ईसा, बुद्ध, गाँधी, विवेकानंद, दयानंद आदि की शुरुआती हालत ऐसी कहाँ थी कि उनसे कोई बड़ी आशा की जाती, पर जब उन्होंने श्रेष्ठता को अपनाने के लिए कमर कस ली, तो भगवान ने उनकी पूरी मदद की। उनकी कठिनाइयों को आसान बनाया, जरूरी सुविधा-साधनों को जुटाया और उससे कहीं अधिक आगे पहुँचाया, जहाँ तक पहुँचने की उन्होंने चाह रखी और योजना बनाई थी।

भागीरथ का गंगा को धरती पर लाने का संकल्प शुरु में असंभव सा लगता था, किंतु ईश्वरीय मदद ने इसको संभव कर दिखाया। साथ ही इस जल-प्रवाह का नाम भागीरथी दिलाकर यह भी प्रसिद्ध किया कि भगीरथ पिता और भागीरथी उनकी पुत्री भर थी। भगीरथ ने शुरु में इसकी कल्पना भी न की होगी। इस रास्ते पर चलने वालों में दधीचि, हरिश्चंद्र जैसे कितने ही अपने जीवन को धन्य बना चुके हैं। हनुमान और अर्जुन को भी वह श्रेय-सम्मान तभी मिल पाया, जब उन्होंने भगवान के बताए रास्ते पर खुद को पूरा समर्पित कर दिया। ऋषि-मुनि और योगी-तपस्वियों की ऋद्धि-सिद्धियों में भी यही सचाई काम करती और चमत्कार दिखाती है।

इस दुर्लभ अवसर को न चूकें—इन दिनों एक अद्‌भुत और दुर्लभ अवसर मनुष्य के सामने आ खड़ा हुआ है। स्वयं भगवान इस संसार रूपी अपनी बगिया में फैली अशांति, अव्यवस्था और बिगड़ी हालत को ठीक करना चाहते हैं। इसके लिए वे युग परिवर्तन की एक सुनिश्चित

योजना बना चुके हैं, जो अपने कई चरणों में लागू भी हो चुकी है। २१वीं सदी में इसका अधिकांश हिस्सा पूरा होगा।

यही समय है कि हम भगवान के काम में अपना हाथ बँटाकर उस सौभाग्य को पाएँ, जो कभी केवट, शबरी, गिद्ध, गिलहरी व वानर-भालुओं ने अपनी साधारण व छोटी-सी स्थिति में भी अपने समर्पण भाव से भगवान के काम में लगकर पाया था। उनमें से कोई भी घाटे में नहीं रहा। यशोधरा के पुत्र राहुल और अशोक की पुत्री संयोगिता ने बुद्ध के इशारों पर अपने को न्यौछावर कर वह श्रेय पाया, जिसे वे अन्य लोगों जैसा ओछा व स्वार्थ भरा जीवन जीते हुए किसी भी तरह नहीं पा सकते थे। बुद्ध-गाँधी की सफलता के पीछे भी इसी सचाई को काम करते हुए देखा जा सकता है। इसी क्रम में पिछले दिनों गुजरात वीरपुर के जलाराम बापा अपना सारा साधन-वैभव भगवान के काम में लगाकर अक्षय अन्न भंडार की झोली पा चुके हैं।

आज इस विशेष समय में जब मनुष्य के अंदर और बाहर के माहौल में दोनों ही मोरचों पर बुराई, आसुरी आतंक और पशुता का दुष्प्रभाव बढ़ा-चढ़ा है, हर व्यक्ति से एक अर्जुन बनकर दोहरा मोरचा सँभालने की जरूरत महसूस की जा रही है। सामयिक सुधार, दबाव, बदलाव के लिए ऐसे जीवंत, जाग्रत इंसानों की जरूरत पड़ रही है, जिनको पांडवों की तरह मोरचे पर अड़ाकर महाभारत को जीतने का श्रेय दिलाया जा सके। भगवान की इस पुकार को सुनने, समझने व अपनाने में समझदारों में से किसी को भी पीछे नहीं रहना चाहिए। □

मुद्रक: युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा